तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित्। यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः ॥४३॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तास्तेन ते सर्वे संस्पृष्टाश्च निरामयाः। समुत्तस्थुर्द्विजा भूयस्तमूचुः प्रश्रयान्वितम् ॥४४॥

पुरोहिता ऊचुः

दीर्घायुरप्रतिहतो बलवीर्यसमन्वितः। पुत्रपौत्रधनैश्वर्यैर्युक्तो वत्स भवोत्तमः ॥४५॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वा तं ततो गत्वा यथावृत्तं पुरोहिताः। दैत्यराजाय सकलमाचचख्युर्महामुने ॥४६॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

हिरण्यकशिपु श्रुत्वा तां कृत्यां वितथीकृताम्। आहूय पुत्रं पप्रच्छ प्रभावस्यास्य कारणम् ॥१॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

प्रह्लाद सुप्रभावोऽसि किमेतत्ते विचेष्टितम्। एतन्मन्त्रादिजनितमुताहो सहजं तव ॥२॥

श्रीपराशर उवाच

एवं पृष्टस्तदा पित्रा प्रह्लादोऽसुरबालकः। प्रणिपत्य पितुः पादाविदं वचनमब्रवीत् ॥३॥

डाल दिया, जिन दिग्गजों ने मेरे ऊपर प्रहार किया तथा जिन सर्पों ने मुझे काटा, उन सबों को मैं मित्रभाव से देखता हूँ उनके प्रति मेरी पाप बुद्धि नहीं है। यदि यह सत्य है तो ये असुर पुरोहित जीवित हो जायँ ॥४२-४३॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इस तरह से कहकर प्रह्लादजी ने ज्यों ही उन पुरोहितों का स्पर्श किया, त्योंहि वे स्वस्थ्य होकर उठ गये और विनयावनत प्रह्लाद से कहे ॥४४॥ **पुरोहितों ने कहा—** हे वत्स ! तुम श्रेष्ठ हो तुम दीर्घ आयु, तथा अप्रतिहत बल एवं पराक्रम से युक्त तथा पुत्र, पौत्र, धन तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न होओ ॥४५॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इस तरह से कहकर वे दैत्यपुरोहित हिरण्यकशिपु के पास आये और सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाये ॥४६॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

प्रह्लादजी के द्वारा भगवान् के गुणों का वर्णन, भगवान् द्वारा प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए चक्रराज को प्रेषित करना

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हिरण्यकशिपु ने जब सुना कि कृत्या व्यर्थ हो गयी तो उसने प्रह्लाद को बुलाकर उसके उस प्रभाव का कारण पूछा ॥१॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** प्रह्लाद तु अत्यन्त प्रभावशाली हो, तुम्हारी ये सारी चेष्टाएँ मन्त्र जनित हैं अथवा स्वाभाविक है ?॥२॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** पिता के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर असुर बालक प्रह्लाद ने अपने पिता के चरणों में नमस्कार करके कहा ॥३॥ हे तात ! यह

न मन्त्रादिकृतं तात न च नैसर्गिको मम। प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि॥४॥
अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा। तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्न विद्यते॥५॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां करोति यः। तद्बीजं जन्म फलति प्रभूतंतस्य चाशुभम्॥६॥
सोऽहं न पापमिच्छामि न करोमि वदामि वा। चिन्तयन्सर्वभूतस्थमात्मन्यपि च केशवम्॥७॥
शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतभवं तथा। सर्वत्र शुभचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः॥८॥
एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी। कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम्॥९॥

श्रीपराशर उवाच

इति श्रुत्वा स दैत्येन्द्रः प्रासादशिखरे स्थितः। क्रोधान्धकारितमुखः प्राह दैतेयकिङ्करान्॥१०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

दुरात्मा क्षिप्यतामस्मात्प्रासादाच्छतयोजनात्। गिरिपृष्ठे पतत्वस्मिन् शिलाभिन्नाङ्गसंहतिः॥११॥
ततस्तं चिक्षिपुः सर्वे बालं दैतेयदानवाः। पपात सोप्यधः क्षिप्तो हृदयेनोद्वहन्हरिम्॥१२॥
पतमानं जगद्धात्री जगद्धातरि केशवे। भक्तियुक्तं दधारैनमुपसङ्गम्य मेदिनी॥१३॥
ततो विलोक्य तं स्वस्थमविशीर्णास्थिपञ्जरम्। हिरण्यकशिपुः प्राह शम्बरं मायिनां वरम्॥१४॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

नास्माभिः शक्यते हन्तुमसौ दुर्बुद्धिबालकः। मायां वेत्ति भवांस्तस्मान्माययैनं निषूदय॥१५॥

शम्बर उवाच

सूदयाम्येव दैत्येन्द्र पश्य मायाबलं मम। सहस्रमत्र मायानां पश्य कोटिशतं तथा॥१६॥

न तो मन्त्र जन्य प्रभाव है, और न तो स्वाभाविक जिस व्यक्ति के हृदय में भगवान् अच्युत का निवास है, उसके लिए यह सामान्य बात है ॥४॥ जो व्यक्ति अपने ही तरह दूसरों का अनभल नहीं सोचता है, हे तात ! किसी कारण के नहीं रहने के कारण उसका भी अनभल नहीं होता है ॥५॥ जो व्यक्ति मन, कर्म तथा वाणी से दूसरों को दुःख देता है, उसके उस परपीडा रूपी बीज से अत्यधिक अशुभ फल उसे प्राप्त होता है ॥६॥ मैं सभी जीवों के भीतर भगवान् केशव को स्थित जानकर किसी का भी न तो बुरा सोचता हूँ, न करता हूँ और न बुरा बोलता हूँ ॥७॥ अतएव सबों का कल्याण चाहने वाले मुझको, शारीरिक, मानसिक या भौतिक दुःख कैसे हो सकता है ?॥८॥ इस तरह श्रीभगवान् को सर्वभूतमय जानकर सभी प्राणियों से अविचल प्रेम करना चाहिए ॥९॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** अपने प्रासाद के ऊपर बैठा हुआ हिरण्यकशिपु प्रह्लाद की इन बातों को सुनकर क्रोधान्ध हो गया और उसने अपने दैत्य किङ्करों से कहा ॥१०॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** यह बड़ा दुरात्मा है। सौ योजन ऊँचे इस महल के ऊपर से इसको गिरा दो जिससे पर्वत के ऊपर यह गिरे और इसके अङ्ग-अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जायँ ॥११॥ उसके बाद वे सभी दैत्य एवं दानव प्रह्लादजी को नीचे फेंक दिये, और वे भी हृदय में श्रीहरि को धारण किए हुए नीचे गिर पड़े ॥१२॥ जगत् के कर्ता भगवान् केशव की भक्ति से युक्त प्रह्लाद को गिरते हुए देखकर, जगत् की रक्षिका भूदेवी उनके सन्निकट में जाकर उन्हें अपनी गोद में ले लिया ॥१३॥ उसके पश्चात् उनको स्वस्थ तथा अङ्गो को बिना टूटे-फूटे देखकर हिरण्यकशिपु मायावियों में श्रेष्ठ शम्बरासुर से कहा ॥१४॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** यह दुर्बुद्धि बालक कोई ऐसी माया जानता है, जिसके कारण इसको हमलोग नहीं मार सकते हैं, अतएव तुम इसे माया से मार डालो ॥१५॥ **शम्बरासुर ने कहा—** दैत्येन्द्र ! इसे मैं अभी मार डालता हूँ। आप मेरी माया का बल देखें। मैं

श्रीपराशर उवाच

ततः स ससृजे मायां प्रह्लादे शम्बरोऽसुरः। विनाशमिच्छन्दुर्बुद्धिः सर्वत्र समदर्शिनि॥१७॥
समाहितमतिर्भूत्वा शम्बरेऽपि विमत्सरः। मैत्रेय सोऽपि प्रह्लादः सस्मार मधुसूदनम्॥१८॥
ततो भगवता तस्य रक्षार्थं चक्रमुत्तमम्। आजगाम समाज्ञप्तं ज्वालामालि सुदर्शनम्॥१९॥
तेन मायासहस्रं तच्छम्बरस्याशुगामिना। बालस्य रक्षता देहमेकैकं च विशोधितम्॥२०॥
संशोषकं तथा वायुं दैत्येन्द्रस्त्विदमब्रवीत्। शीघ्रमेष ममादेशाच्छुरात्मा नीयतां क्षयम्॥२१॥
तथेत्युक्त्वा तु सोऽप्येनं विवेश पवनो लघु। शीतोऽतिरूक्षः शोषाय तद्देहस्यातिदुःसहः॥२२॥
तेनाविष्टमथात्मानं स बुद्ध्वा दैत्यबालकः। हृदयेन महात्मानं दधार धरणीधरम्॥२३॥
हृदयस्थस्ततस्तस्य तं वायुमतिभीषणम्। पपौ जनार्दनः क्रुद्धः स ययौ पवनः क्षयम्॥२४॥
क्षीणासु सर्वमायासु पवने च क्षयं गते। जगाम सोऽपि भवनं गुरोरेव महामतिः॥२५॥
अहन्यहन्यथाचार्यो नीतिं राज्यफलप्रदाम्। ग्राहयामास तं बालं राज्ञामुशनसा कृताम्॥२६॥
गृहीतनीतिशास्त्रं तं विनीतं च यदा गुरुः। मेने तदैनं तत्पित्रे कथयामास शिक्षितम्॥२७॥

आचार्य उवाच

गृहीतनीतिशास्त्रस्ते पुत्रो दैत्यपते कृतः। प्रह्लादस्तत्त्वतो वेत्ति भार्गवेण यदीरितम्॥२८॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

मित्रेषु वर्तेत कथमरिवर्गेषु भूपतिः। प्रह्लाद त्रिषु लोकेषु मध्यस्थेषु कथं चरेत्॥२९॥
कथं मन्त्रिष्वमात्येषु बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च। चारेषु पौरवर्गेषु शङ्कितेष्वितरेषु च॥३०॥

आपको सैकड़ों, हजारों तथा करोड़ों मायाओं को दिखाता हूँ ॥१६॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके बाद उस दुर्बुद्धि शम्बरासुर ने सर्वत्र समदर्शी प्रह्लादजी को मारने के लिए माया की सृष्टि की। हे मैत्रेय ! शम्बरासुर के प्रति भी द्वेष की भावना से रहित प्रह्लादजी ने भगवान् मधुसूदन का स्मरण किया ॥१८॥ उस समय श्रीभगवान् की आज्ञा पाकर ज्वाला समूह से व्याप्त सुदर्शन चक्र आ गये ॥१९॥ उसके पश्चात् शीघ्रगामी चक्रराज ने उस बालक के शरीर की रक्षा करते हुए शम्बरासुर की सारी मायाओं को एक-एक करके काट दिया ॥२०॥ उसके पश्चात् दैत्यराज ने सबों को सुखा डालने वाले वायु से कहा कि तुम मेरी आज्ञा से इस दुष्ट को विनष्ट कर दो ॥२१॥ उस शीतल रूक्ष तथा दुःसह वायु ने भी 'बहुत अच्छा कहकर' प्रह्लादजी के शरीर में प्रवेश किया ॥२२॥ उस वायु के द्वारा अविष्ट अपने शरीर को जानकर प्रह्लादजी ने अपने हृदय में भगवान् धरणीधर को धारण किया ॥२३॥ प्रह्लादजी के हृदय में विद्यमान भगवान् जनार्दन ने क्रोध करके उस भयङ्कर वायु को पी लिया, और वह वायु विनष्ट हो गया ॥२४॥ सभी मायाओं के तथा वायु के विनष्ट हो जाने पर बुद्धिमान प्रह्लाद अपने गुरु के घर गये ॥२५॥ उसके बाद गुरु ने प्रतिदिन राज्य रूपी फल प्रदान करने वाली शुक्राचार्य द्वारा प्रणीति राजनीति को पढ़ाया ॥२६॥ जब आचार्य ने यह जान लिया कि यह बालक राजनीति को पढ़ लिया है तो प्रह्लादजी के पिता से गुरुओं ने कहा कि अब यह बालक सुशिक्षित हो गया है ॥२७॥ **आचार्य ने कहा—** हे दैत्यराज ! आपके पुत्र ने नीतिशास्त्र को जान लिया है। शुक्राचार्य ने जिस नीति का निर्माण किया है, उसे प्रह्लाद ने तत्त्वतः जान लिया है ॥२८॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** प्रह्लाद ! मित्रों से कैसा वर्ताव करना चाहिए ? शत्रुओं से कैसा व्यवहार करना चाहिए ? तथा तीनों लोकों में विद्यमान मध्यस्थ लोगों से कैसा व्यवहार करना चाहिए ?॥२९॥ मन्त्रियों, आमात्यों, बाह्य तथा अन्तःपुर

कृत्याकृत्यविधानञ्च दुर्गाटविकसाधनम्। प्रह्लाद कथ्यतां सम्यक् तथा कण्टकशोधनम्॥३१॥
एतच्चान्यच्च सकलमधीतं भवता यथा। तथा मे कथ्यतां ज्ञातुं तवेच्छामि मनोगतम्॥३२॥

श्रीपराशर उवाच

प्रणिपत्य पितुः पादौ तदा प्रश्रयभूषणः। प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं कृताञ्जलिपुटस्तथा॥३३॥

प्रह्लाद उवाच

ममोपदिष्टं सकलं गुरुणा नात्र संशयः। गृहीतन्तु मया किन्तु न सदेतन्मतं मम॥३४॥
साम चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथापरौ। उपायाः कथिताः सर्वे मित्रादीनां च साधने॥३५॥
तानेवाहं न पश्यामि मित्रादींस्तात मा क्रुधः। साध्याभावे महाबाहो साधनैः किं प्रयोजनम्॥३६॥
सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये। परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः॥३७॥
त्वय्यस्ति भगवान् विष्णुर्मयि चान्यत्र चास्ति सः। यतस्ततोऽयं मित्रं मे शत्रुश्चेति पृथक्कुतः॥३८॥
तदेभिरलमत्यर्थं दुष्टारम्भोक्तिविस्तरैः। अविद्यान्तर्गतैर्यत्नः कर्त्तव्यस्तात शोभने॥३९॥
विद्याबुद्धिरविद्यायामज्ञानात्तात जायते। बालोऽग्निं किं न खद्योतमसुरेश्वर मन्यते॥४०॥
तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥४१॥
तदेतदवगम्याहमसारं सारमुत्तमम्। निशामय महाभाग प्रणिपत्य ब्रवीमि ते॥४२॥
न चिन्तयति को राज्यं को धनं नाभिवाञ्छति। तथापि भाव्यमेवैतदुभयं प्राप्यते नरैः॥४३॥

के सेवकों, गुप्तचरों, नगरवासियों, शङ्कितों (जिनको जितकर दास बना लिया गया है) तथा उनसे भिन्न (स्वामी के हितैषियों) लोगों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए ?॥२९-३०॥ करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्यों के विधान को बतलाओ, दुर्ग तथा आटविक (जङ्गली मनुष्यों) को वश में करने का साधन क्या है ? प्रह्लाद यह अच्छी तरह बतलाओ कि शत्रु रूपी काँटे को कैसे निकाले ?॥३१॥ इन सारी बातों को तथा और भी तुमने जो अध्ययन किया है, उन सारी बातों को बतलाओ मैं तुम्हारे मनोगत भावों को जानना चाहता हूँ॥३२॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उस समय प्रह्लादजी ने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर दैत्येन्द्र से कहने लगे॥३३॥ **प्रह्लादजी ने कहा—** मुझे गुरुजी ने इन सारी बातों को पढ़ाया है, और मैं उसे समझ भी गया हूँ, किन्तु मेरे विचार से ये नीतियाँ अच्छी नहीं है॥३४॥ मित्रों आदि को वश में करने के लिए साम, दान, दण्ड तथा भेद ये सभी नीतियाँ बतलायी गयी हैं॥३५॥ किन्तु पिताजी आप क्रोध न करें; मैं न तो किसी के शत्रु समझता हूँ और न किसी को मित्र समझता हूँ। ऐसी स्थिति में जब कोई साध्य ही नहीं है, तो उन साधनों से क्या प्रयोजन है?॥३६॥ हे तात ! सर्वभूतात्मक, जगत् के स्वामी, जगत् स्वरूप, परमात्मा गोविन्द के विषय में मित्र तथा अमित्र की कोई बात ही कहाँ है ?॥३७॥ वे भगवान् विष्णु आप में, मुझमें तथा अन्यत्र सर्वत्र व्यापक हैं। ऐसी स्थिति में यह मेरा मित्र है और यह मेरा शत्रु है, इस तरह की कोई बात ही कहाँ से होगी॥३८॥ हे तात ! अविद्या (अज्ञान) जन्य होने के कारण ये सारी बातें दोष दूषित हैं। इन सबों का परित्याग करके आत्मकल्याण का प्रयास करना चाहिये॥३९॥ हे तात ! अज्ञान के कारण ही मनुष्यों की अविद्या में विद्या की बुद्धि हो जाती है। क्या बालक अज्ञानवश अग्नि को ही खद्योत (जुगनू) नहीं समझ लेता है ?॥४०॥ कर्म वही है जिससे संसार का बन्धन न हो, उसके अतिरिक्त सभी कर्म परिश्रम रूप हैं। विद्या भी वही है जिससे मुक्ति मिले, उसके अतिरिक्त सारी विद्याएँ कला कौशल मात्र ही हैं॥४१॥ हे तात ! इन सारी बातों को सार रहित समझकर मैं जिन बातों को सार स्वरूप समझता

सर्व एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्यमाः। तथापि पुंसां भाग्यानि नोद्यमा भूतिहेतवः ॥४४॥
जडानामविवेकानामशूराणामपि प्रभो। भाग्यभोज्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि ॥४५॥
तस्माद्यतेत पुण्येषु य इच्छेन्महतीं श्रियम्। यतितव्यं समत्वे च निर्वाणमपि चेच्छता ॥४६॥
देवा मनुष्याः पशवः पक्षिवृक्षसरसीसृपाः। रूपमेतदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नमिव स्थितम् ॥४७॥
एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपधृक् ॥४८॥
एवं ज्ञाते स भगवाननादिः परमेश्वरः। प्रसीदत्यच्युतस्तस्मिन्प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः ॥४९॥

श्रीपराशर उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कोपेन समुत्थाय वरासनात्। हिरण्यकशिपु पुत्रं पदा वक्षस्यताडयत् ॥५०॥
उवाच च स कोपेन सामर्षः प्रज्वलन्निव। निष्पिष्य पाणिना पाणिं हन्तुकामो जगद्यथा ॥५१॥

हिण्यकशिपुरुवाच

हे विप्रचित्ते हे राहो हे बलैष महार्णवे। नागपाशैर्दृढैर्बद्ध्वा क्षिप्यतां मा विलम्ब्यताम् ॥५२॥
अन्यथा सकला लोकास्तथा दैतेयदानवाः। अनुयास्यन्ति मूढस्य मतमस्य दुरात्मनः ॥५३॥
बहुशो वारितोऽस्माभिरयं पापस्तथाप्यरेः। स्तुतिं करोति दुष्टानां वध एवोपकारकः ॥५४॥

श्रीपराशर उवाच

ततस्ते सत्वरा दैत्या बद्ध्वा तं नागबन्धनैः। भर्तुराज्ञां पुरस्कृत्य चिक्षिपुः सलिलार्णवे ॥५५॥

हूँ, उसे मैं आपको प्रणाम करके सुनाता हूँ; उसे सुनिये ॥४२॥ राज्य प्राप्त करने की इच्छा किसको नहीं होती है ? कौन है जो धन नहीं प्राप्त करना चाहता है ? किन्तु ये उसी को मिलते हैं, जिसे मिलने वाले होते हैं ॥४३॥ हे महाभाग ! सबलोग चाहते हैं कि मुझे महत्त्व की प्राप्ति हो किन्तु ऐश्वर्य की प्राप्ति का साधन तो भाग्य है, प्रयत्न नहीं॥४४॥ हे प्रभो ! जड, अविवेकी, कायर तथा अनीतिज्ञों को भी भाग्यवशात् भोग्य पदार्थ की प्राप्ति तथा राज्य की प्राप्ति हो जाती है ॥४५॥ अतएव जिसे महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति की इच्छा हो, उसे पुण्य कर्मों को करने का प्रयास करना चाहिए और जिसे मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा हो उसे समदृष्टि सम्पन्न होने का प्रयास करना चाहिए॥४६॥ देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, सर्पादि ये सबके सब भगवान् विष्णु से भिन्न रूप में स्थित के समान प्रतीति होने वाले उनके ही रूप हैं ॥४७॥ इस बात को अच्छी तरह से जानने वाले पुरुष को चाहिए कि वह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् को आत्मा के समान देखे, क्योंकि भगवान् विष्णु विश्वरूपधारी हैं ॥४८॥ इस प्रकार का ज्ञान हो जाने पर उस पुरुष पर अनादि परमेश्वर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं; और उनके प्रसन्न हो जाने पर सम्पूर्ण क्लेशों का नाश हो जाता है ॥४९॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इन सारी बातों को सुनकर हिरण्यकशिपु अपने सिंहासन से उठकर अपने पुत्र प्रह्लाद के वक्षःस्थल पर पैर से प्रहार किया ॥५०॥ उसके पश्चात् क्रोध तथा आमर्ष से मानो जलता हुआ, वह हाथ से हाथ को मलते हुए ऐसे लगने लगा जैसे वह संसार को मार डालना चाहता हो ॥५१॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** हे विप्रचित्ति ! हे राहु, इस बालक को नागपाशि में दृढता पूर्वक बाँधकर शीघ्र ही महासागर में फेंक दो॥५२॥ अन्यथा सम्पूर्ण संसार दैत्य तथा दानव इस मूर्ख दुरात्मा के मत का अनुगमन करने लग जायेंगे।॥५३॥ बार-बार रोकने पर भी यह दुष्ट शत्रु के ही पक्ष की प्रशंसा करता है, ऐसे दुष्टों को तो मार डालना ही उपकारी होता है॥५४॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके बाद वे दैत्य अपने स्वामी की आज्ञा मानकर प्रह्लादजी को शीघ्र ही नागपाश में बाँधकर सागर में फेंक दिए ॥५५॥ उस समय प्रह्लादजी के अङ्ग संचार करने से सागर में हलचल मच

ततश्चचाल चलता प्रह्लादेन महार्णवः । उद्वेलोऽभूत्परं क्षोभमुपेत्य च समन्ततः ॥५६॥
भूर्लोकमखिलं दृष्ट्वा प्लाव्यमानं महाम्भसा । हिरण्यकशिपुर्दैत्यानिदमाह महामते ॥५७॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

दैतेया सकलैः शैलैरत्रैव वरुणालये । निश्छिद्रैः सर्वशः सर्वैश्चीयतामेष दुर्मतिः ॥५८॥
नाग्निर्दहति नैवायं शस्त्रैश्छिन्नो न चोरगैः । क्षयं नीतो न वातेन न विषेण न कृत्यया ॥५९॥
न मायाभिर्न चैवोच्चात्पातितो न च दिग्गजैः । बालोऽतिदुष्टचित्तोऽयं नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥६०॥
तदेष तोयमध्ये तु समाक्रान्तो महीधरैः । तिष्ठत्वब्दसहस्रान्तं प्राणान्हास्यति दुर्मतिः ॥६१॥
ततो दैत्या दानवाश्च पर्वतैस्तं महोदधौ । आक्रम्य चयनं चक्रुर्योजनानि सहस्रशः ॥६२॥
स चित्तः पर्वतैरन्तः समुद्रस्य महामतिः । तुष्टावाह्निकवेलायामेकाग्रमतिरच्युतम् ॥६३॥

प्रह्लाद उवाच

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते पुरुषोत्तम । नमस्ते सर्वलोकात्मन्नमस्ते तिग्मचक्रिणे ॥६४॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥६५॥
ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः । रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्तये ॥६६॥
देवा यक्षासुराः सिद्धा नागा गन्धर्वकिन्नराः । पिशाचा राक्षसाश्चैव मनुष्याः पशवस्तथा ॥६७॥
पक्षिणः स्थावराश्चैव पिपीलिकसरीसृपाः । भूम्यापोऽग्निर्नभो वायु शब्दः स्पर्शस्तथा रसः ॥६८॥
रूपं गन्धो मनो बुद्धिरात्मा कालस्तथा गुणाः । एतेषां परमार्थश्च सर्वमेतत्त्वमच्युत ॥६९॥

गयी और अत्यन्त क्षुब्ध होकर उसमें चारो ओर ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं ॥५६॥ हे महामते ! सम्पूर्ण पृथवी को डूबती हुई देखकर हिरण्यकशिपु ने दैत्यों से कहा ॥५७॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** दैत्यों ! इस दुर्मति को तुमलोग इस समुद्र में ही पर्वतों से ऐसे ढँक दो कि किसी तरह से इसके अङ्ग खुले न रहें ॥५८॥ यह बालक अत्यन्त दुष्ट हृदय वाला है, इसके जीवित रहने से कोई लाभ नहीं है, इसको न तो अग्नि ने जलाया, न यह शस्त्रों से कटा, न तो सर्प इसे मार सके, न वायु सुखा पायी, यह विष से भी नहीं मरा, न कृत्या से यह मरा, मायाओं से भी नहीं मरा ऊपर से नीचे गिरने से भी नहीं मरा और न तो दिग्गज ही इसे मार सके ॥५९-६०॥ अतएव यह जल के भीतर पर्वतों से दबा हुआ हजारों वर्ष तक पड़ा रहे, ऐसा करने से यह दुर्मति अपने प्राणों का परित्याग कर देगा ॥६१॥ उसके पश्चात् दैत्य और दानव प्रह्लादजी को समुद्र में ही पर्वतों से ढँककर हजारो योजन तक पर्वतों का ढेर लगा दिए ॥६२॥ महामति प्रह्लादजी समुद्र के भीतर ही पर्वतों से ढँके रहने पर भी नित्य कर्म के समय, एकाग्रमना होकर भगवान् अच्युत की स्तुति करने लगे ॥६३॥ **प्रह्लादजी ने कहा—** हे पुण्डरीकाक्ष ! आपको नमस्कार है, हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है, हे सम्पूर्ण जीवों के आत्मा स्वरूप ! आपको नमस्कार है, हे तीक्ष्ण चक्रधारी ! आपको नमस्कार है ॥६४॥ गौओं तथा ब्राह्मणों का कल्याण करने वाले, ब्रह्मण्य देव संसार का कल्याण करने वाले, भगवान् कृष्ण, भगवान् गोविन्द को बारम्बार नमस्कार है ॥६५॥ ब्रह्मारूप से जगत् की सृष्टि करने वाले, स्थिति काल में जगत् का पालन करने वाले तथा कल्प के अन्त में रुद्ररूप से जगत् का संहार करने वाले आप त्रिमूर्ति को नमस्कार है ॥६६॥ हे भगवन् अच्युत ! देव, यक्ष, असुर, सिह, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, पिपीलिका (चींटी) सरीसृप (सर्प आदि सरक कर चलने वाले) पृथिवी, जल, तेज, आकाश, वायु, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल तथा गुण इन सबों में परमार्थ रूप

विद्याविद्ये भवान्सत्यमसत्यं त्वं विषामृते। प्रवृत्तं च निवृत्तं च कर्म वेदोदितं भवान् ॥७०॥
समस्तकर्मभोक्ता च कर्मोपकरणानि च। त्वमेव विष्णो सर्वाणि सर्वकर्मफलं च यत् ॥७१॥
मय्यन्यत्र तथान्येषु भूतेषु भुवनेषु च। तवैव व्याप्तिरैश्वर्यगुणसंसूचिकी प्रभो ॥७२॥
त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च याजकाः। हव्यकव्यभूगेकस्त्वं पितृदेवस्वरूपधृक् ॥७३॥

रूपं महत्ते स्थितमत्र विश्वं ततश्च सूक्ष्मं जगदेतदीश ।
रूपाणि सर्वाणि च भूतभेदास्तेष्वन्तरात्माख्यमतीव सूक्ष्मम् ॥७४॥
तस्माच्च सूक्ष्मादिविशेषणाना मगोचरे यत्परमात्मरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमस्ति तस्मै नमस्तेपुरुषोत्तमाय ॥७५॥

सर्वभूतेषु सर्वात्मन्या शक्तिरपरा तव। गुणाश्रया नमस्तस्यै शश्वतायै सुरेश्वर ॥७६॥
यातीतगोचरा वाचां मनसां चाविशेषणा। ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्यां तां वन्दे स्वेष्वरीं पराम् ॥७७॥
ॐ नमो वासुदेवाय तस्मै भगवते सदा। व्यतिरिक्तं न यस्यास्ति व्यतिरिक्तोऽखिलस्य यः ॥७८॥
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै महात्मने। नाम रूपं न यस्यैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते ॥७९॥
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने ॥८०॥
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम्। तं सर्वसाक्षिणं विश्वं नमस्ये परमेश्वरम् ॥८१॥
नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत्। ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः ॥८२॥

से आप ही हैं ॥६७-६९॥ आप ही विद्या, अविद्या, सत्य-असत्य, विष तथा अमृत, वेदोदित, प्रवृत्ति कर्म तथा निवृत्तिकर्म आप ही हैं ॥७०॥ हे भगवन् विष्णो ! आप ही समस्त कर्मों के फलों को भोगने वाले, उन कर्मों की सामग्री तथा समस्त कर्मों के फल हैं ॥७१॥ हे प्रभो ! मुझमें, अन्यत्र, अन्य भूतों में, लोकों में आपके ऐश्वर्य को सूचित करने वाली आपकी ही व्याप्ति है ॥७२॥ योगिजन आपका ही ध्यान करते हैं, यज्ञ करने वाले आपका ही यजन करते हैं, पितृगण तथा देवगण के रूप को धारण करने वाले आप ही हव्य (हविष्य) तथा काव्य का भोग करने वाले हैं ॥७३॥ हे ईश ! आपका स्थूल रूप सम्पूर्ण विश्व है, उससे छोटा आपका रूप यह भूलोक है । उससे सूक्ष्म रूप अव्यक्त तथा महदादि हैं, उनसे भी सूक्ष्म रूप पृथिव्यादि भूत हैं । आपका अत्यन्त सूक्ष्म रूप उन भूतों की अन्तरात्मा रूप है ॥७४॥ उससे भी सूक्ष्म रूप सूक्ष्म आदि विशेषणों के अविषयभूत आपका परमात्मा रूप है॥७५॥ आपके पुरुषोत्तम रूप को सामान्य बुद्धि से चिन्तन भी नहीं किया जा सकता है । आपके उस पुरुषोत्तम रूप को बारम्बार नमस्कार है ॥७५॥ हे सुरेश्वर ! हे सर्वात्मन् ! सभी भूतों के भीतर जो आपकी अपराशक्ति है, जो गुणों का आश्रय तथा शाश्वत है, आपकी उस शक्ति को नमस्कार है ॥७६॥ आपकी जो निरङ्कुश परा शक्ति है, जो वाणी तथा मन का विषय नहीं बनती हैं, आपकी उस उत्कृष्टा शक्ति की मैं वन्दना करता हूँ ॥७७॥ ओङ्कार स्वरूप उन भगवान् वासुदेव को नमस्कार है जिनसे भिन्न इस संसार में कुछ भी नहीं है, जो भगवान् स्वेतर समस्त वस्तुओं से विलक्षण हैं ॥७८॥ जिनका कोई एक नाम नहीं है जिनकी उपलब्धि सद्रूप से होती है, उन महात्मा श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है ॥७९॥ जिन भगवान् विष्णु के अवतार रूपों की अर्चना देवगण किया करते हैं, श्रीभगवान् के परवासुदेव रूप का साक्षात्कार देवता भी नहीं कर पाते हैं उन महात्मा भगवान् विष्णु को नमस्कार है ॥८०॥ जो परमात्मा सम्पूर्ण जगत् के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहकर, जीवों के शुभ तथा अशुभ कर्मों को देखते हैं उन विश्व स्वरूप सम्पूर्ण जगत् के साक्षी स्वरूप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥८१॥ जिन भगवान् विष्णु से यह जगत् अभिन्न है,

यत्रोतमेतत्प्रोतं च विश्वमक्षरमव्ययम् । आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ॥८३॥
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः । यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः ॥८४॥
सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः । मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ॥८५॥
अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मात्मसंश्रयः । ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च परः पुमान् ॥८६॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

एवं सञ्चिन्तयन्विष्णुमभेदेनात्मनो द्विज । तन्मयत्वमवाप्याग्र्यं मेने चात्मानमच्युतम् ॥१॥
विसस्मार तथात्मानं नान्यत्किञ्चिदजानत । अहमेवाव्ययोऽनन्तः परमात्मेत्यचिन्तयत् ॥२॥
तस्य तद्भावनायोगात्क्षीणपापस्य वै क्रमात् । शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुस्तस्थौ ज्ञानमयोऽच्युतः ॥३॥
योगप्रभावात्प्रह्लादे जाते विष्णुमयेऽसुरे । चलत्युरगबन्धैस्तैर्मैत्रेय त्रुटितं क्षणात् ॥४॥
भ्रान्तग्राहगणः सोर्मिर्ययौ क्षोभं महार्णवः । चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ॥५॥

जो जगत् के प्रधान कारण हैं, तथा योगिजन जिनका ध्यान किया करते हैं, वे अव्यय भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥८२॥ जिन अव्यय तथा अक्षर स्वरूप श्रीहरि में यह जगत् ओत-प्रोत है जो सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं, वे भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों ॥८३॥ जिनमें सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जिनसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है, जो सर्वस्वरूप हैं, तथा सबों के आधार स्वरूप हैं, उन ओङ्कार स्वरूप भगवान् विष्णु को बारम्बार नमस्कार है ॥८४॥ चूकि भगवान् अनन्त सर्वव्यापक हैं, मैं भी तदात्मक ही हूँ । अतएव सारा जगत् मुझ से ही उद्भूत है, मैं सर्व स्वरूप हूँ और मुझ सनातन में ही सबकुछ अवस्थित है ॥८५॥ मैं ही अक्षय, नित्य, आत्माधार तथा परमात्मा हूँ । मैं ही जगत् के आदि तथा अन्त में स्थित ब्रह्मसंज्ञक परमपुरुष हूँ ॥८६॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

प्रह्लाद कृत भगवत् स्तुति और भगवान् का आविर्भाव

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हे द्विज ! अपने से अभिन्न रूप से इस प्रकार से भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए प्रह्लाद जी उत्तमकोटि की तन्मयता को प्राप्त करके अपने को अच्युत रूप से अनुभव करने लगे ॥१॥ उस समय उन्हें भगवान् विष्णु से अतिरिक्त कुछ भी नहीं प्रतीत होता था वे अपने को भी भूल गये । वे सोचने लगे कि मैं ही अव्यय, अनन्त तथा परमात्मा हूँ ॥२॥ इस तरह से उनकी भावना के हो जाने से उनके सारे पाप (कर्म) विनष्ट हो गये और उनके शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञान स्वरूप भगवान् अच्युत स्थित हो गये ॥३॥ हे मैत्रेय ! इस प्रकार के योगबल से असुर प्रह्लादजी के विष्णु स्वरूप हो जाने पर उनके विचलित होते ही क्षणभर में ही सर्पों का बन्धन टूट गया ॥४॥ घूमते हुए ग्राह समूह और उन्नत लहरों से महासागर क्षुब्ध हो गया पर्वतों तथा वनों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी